लड़कियों की शिक्षा : बाधाएं और संभावनाएं

✍ डॉ. साधना सक्सेना

वर्ष 2008–09 के दौरान डॉ. साधना सक्सेना ने एक टीम के साथ यूनीसेफ, भोपाल के लिए मध्यप्रदेश में लड़कियों की शिक्षा की परिस्थिति पर एक राज्य स्तरीय अध्ययन किया था। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य लड़कियों की शिक्षा में बाधक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को समझना था। उन्होंने इस संदर्भ में कई पहलुओं की विस्तार से पड़ताल की। मई, 2009 में विद्या भवन, उदयपुर में इस पर आधारित एक व्याख्यान दिया था। इस व्याख्यान के लिप्यांतरण का संपादित अंश यहां प्रस्तुत है।

यह अध्ययन हालांकि चार साल पुराना है लेकिन इसमें उभरे मुद्दे लड़कियों की शिक्षा के संदर्भ में आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं।

कुछ तथ्य

- यह एक राज्य स्तरीय अध्ययन था, जिसे यूनीसेफ के लिए मध्यप्रदेश में किया गया।
- अध्ययन का उद्देश्य लड़कियों की शिक्षा में बाधक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को समझना था।
- मध्यप्रदेश के 308 प्रखंडों में से 30 प्रखंड निम्न सूचकों को ध्यान में रखकर चुने गए : लिंग अनुपात, साक्षरता दर, साक्षरता दर में जेंडर गैप, शिशु मृत्यु दर और शादी की उम्र। इसके अलावा प्रसव के दौरान मातृ मृत्युदर को भी ध्यान में रखा गया था। इन सूचकों के संदर्भ में बेहतरीन इलाके, औसत इलाके और बदतर इलाके सभी को शामिल किया गया, ताकि एक बेहतर प्रतिनिधित्व हो।
- 30 में 14 प्रखंडों में सघन फील्ड वर्क किया गया। इनका चुनाव किसी सैद्धांतिक आधार पर नहीं किया गया था, बल्कि व्यावहारिक कारणों को ध्यान में रखकर किया गया।
- 30 गांवों के करीब 50 स्कूलों का अवलोकन किया गया।
- फील्डवर्क सघन और विस्तृत साक्षात्कार और फोकस समूह चर्चाओं पर आधारित था। इसमें कुल मिलाकर 449 साक्षात्कार और 47 फोकस समूह चर्चाएं हुईं। इसके लिए 82 पिता, 73 माएं, 44 पुरुष शिक्षक, 23 महिला शिक्षक, 89 स्कूली लड़कियों, 57 स्कूल न जा पाने वाली लड़कियों के अलावा शिक्षक अभिभावक संघ सदस्य, 14 जेंडर समन्वयक ,सरकारी अधिकारी, स्वयं सहायता समूह सदस्य, आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता, पंच और सरपंच शामिल हैं।
- अध्ययन का केंद्र ग्रामीण इलाका था, परंतु इसमें एक कस्बाई क्षेत्र परासिया शामिल था। इंदौर, भोपाल जैसे शहरों का प्रतिनिधित्व इसमें नहीं हुआ। तीन

केस स्टडी हुई हैं। इनमें से एक उज्जैन और देवास इलाके की है और दो दलित बस्तियों पर केंद्रित हैं।

- अध्ययन में कुछ छात्रावासों को भी देखा गया और उनमें रह रही छात्राओं तथा वहां के अधिकारियों से चर्चा की गई।

असमानता की जड़ें पहचानना

सर्व शिक्षा अभियान 6 से 14 वर्ष के बच्चों को आठवीं तक मुफ्त शिक्षा दिलवाने का एक महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्यक्रम है। इसका एक प्रमुख उद्देश्य लड़के और लड़कियों की शिक्षा के बीच की खाई को कम करते हुए शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराना और समानता लाना है। इसका एक महत्त्वपूर्ण पहलू है जेंडर समानता। शिक्षा विभाग में जेंडर समानता को दो तरह से समझा जाता है। पहला, कितनी लड़कियों का स्कूलों में नामांकन हुआ और दूसरा, कितनी लड़कियां किस कक्षा तक पहुंचकर स्कूल छोड़ देती हैं। यानी कुल मिलाकर इन आंकड़ों से यह समझने की कोशिश होती है कि स्कूल की नामांकन दर में समानता हासिल हुई या नहीं। जेंडर असमानता को समझने के लिए नामांकन दर या कितनी लड़कियां किस कक्षा तक पहुंची या नहीं पहुंची मात्र यह जानना पर्याप्त नहीं है। असमानता की जड़ें समाज व्यवस्था और सोच में हैं। सवाल यह उठता है कि अगर यह लक्ष्य हासिल नहीं हुआ है तो क्यों? या यदि हासिल हुआ भी तो क्या उनके जीवन में समानता आई?

एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लड़कियों का समूह एक समान हैसियत वाला समूह नहीं होता है। लड़कियों के समूह में ही कई श्रेणियां हैं, मसलन, पिछड़ी जातियों, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक परिवारों की लड़कियां इत्यादि। इन सब श्रेणियों के बीच भी किस–किस तरह की असमानताएं और द्वन्द्व हैं और इनके लिए शिक्षा के लक्ष्यों को हासिल करने में कौन–कौन सी विशिष्ट दिक्कतें सामने आती हैं, यह समझना भी जरूरी है। असल में इस अध्ययन के दो पहलू हैं। एक पहलू तो यह है कि शिक्षा को लेकर जो राज्य या राष्ट्र स्तरीय आंकड़े एकत्र किए जाते हैं; जो सेकेंड्री आंकड़े कहलाते हैं और मुख्यतः संख्यात्मक होते हैं; उससे उभरने वाला राज्य स्तरीय चित्र क्या है? दूसरा पहलू है गांव और शहरी स्तर पर, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से जमीनी गुणात्मक जानकारी इकट्ठी करके यह जानना कि वास्तविकता है क्या? मैं आपको सिर्फ एक उदाहरण से बताने की कोशिश करती हूं कि संख्यात्मक जानकारी की कितनी सीमाएं हैं और गुणात्मक जानकारी क्यों जरूरी है। जैसे, राष्ट्र या राज्य स्तर पर जो आंकड़े इकट्ठे किए जाते हैं उनमें एक सवाल यह पूछा जाता है कि शाला में बाउंड्री वॉल है या नहीं है? यहां पहला प्रश्न यह उठता है कि बाउंड्री वॉल को इतना महत्त्व क्यों दें और दूसरा, कि वह है या नहीं? हम लोगों ने खुद भी नहीं सोचा था कि यह एक इतना महत्त्वपूर्ण मुद्दा हो सकता है। मान लीजिए कि संख्यात्मक जानकारी से पता चला कि राज्य के 40% स्कूलों में बाउंड्री वॉल है। परंतु यदि हम गहराई से सोचें तो इससे कुछ खास पता नहीं चलता है। यह इसलिए क्योंकि कभी बाउंड्री वॉल मात्र कुछ झाड़ियां होती है या सिर्फ कुछ तार लगाकर होती है तो कभी यह अच्छी पक्की दीवार होती है। बाउंड्री वॉल वास्तव में स्कूल के लिए सुरक्षा का

माध्यम होती है और स्कूल की अपनी संस्थागत जगह का अहसास कराती है। इसलिए कच्ची या झाड़ियों की बाउंड्री वॉल का कोई अर्थ नहीं होता है। बाउंड्री वॉल है या नहीं जैसा संख्यात्मक प्रश्न, किसको बाउंड्री वॉल कहा जा रहा है, इसका उत्तर नहीं देता है।

इसी प्रकार से राज्य और देश के स्तर के आंकड़ों में यह बात नहीं होती है कि किस तरह के शौचालय स्कूलों में उपलब्ध हैं। हम लोगों ने जब अपनी रिपोर्ट का पहला ड्राफ्ट पेश किया तब सरकारी अधिकारियों को आपत्ति थी कि इसके अधिकतर अध्यायों में हम शौचालयों की बात कर रहे थे। जमीनी वास्तविकता यह थी कि घूम–फिरकर यह बात लड़कियों की शिक्षा के संदर्भ में सामने आ ही जाती थी। जब मध्यप्रदेश के सरकारी लोगों के सामने अध्ययन का पहला प्रस्तुतिकरण हुआ तो वे बौखला गए। वे पूछने लगे कि आपके लिए शौचालय इतना महत्त्वपूर्ण क्यों है? हमने समझाया कि लड़कियों की शिक्षा हो पाने या न हो पाने में शौचालयों का अहम महत्त्व है। ऐसी महत्त्वपूर्ण जानकारियां सेकेंड्री आंकड़ों से नहीं मिलती हैं। सेकेंड्री आंकड़े राज्य स्तरीय संख्यात्मक चित्र पेश करते हैं परंतु इससे ज्यादा कुछ भी समझ में नहीं आता। इसलिए स्कूलों के स्तर पर, चाहे वे गांव के स्कूल हों, चाहे शहरी स्कूल हों, जमीनी परिस्थिति को समझना बहुत जरूरी है।

एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लड़कियां क्यों पढ़ें इसको लेकर राजसत्ता और वयस्कों के मत ही सामने आते हैं। यानी मां–बाप क्यों चाहते हैं या सरकार क्यों चाहती है कि लड़कियां पढ़ें, इत्यादि। कभी लड़कियों से नहीं पूछा जाता कि वे क्यों पढ़ना चाहती हैं। पढ़ाई से उनकी क्या उम्मीदें, सपने और अपेक्षाएं हैं? लड़कियों के साथ बातचीत और साक्षात्कारों से हमको यह समझ में आया कि लड़कियों की सोच कितनी फर्क है। मतलब देश की उन्नति या परिवार की उन्नति के लिए पढ़ना चाहिए जैसी बातों, जो वयस्क दुनिया की सोच है, से लड़कियों का खास सरोकार नहीं था। सवाल यह है कि चौथी, छठवीं, दसवीं इत्यादि में पढ़ने वाली लड़कियां खुद क्यों पढ़ना चाहती हैं या क्यों नहीं पढ़ना चाहतीं? मसलन, अधिकतर लड़कियों ने हमें बताया कि वे पढ़कर डॉक्टर बनना चाहती हैं, पुलिस और शिक्षिका बनना चाहती हैं या आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ता बनना चाहती हैं। किसी ने नहीं कहा कि वे परिवार बेहतर चलाने या अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए पढ़ना चाहती हैं। इस बात को समझना बहुत जरूरी है और शायद नीतियां बनाने के लिए इन बातों पर नजर रखना महत्त्वपूर्ण है। यह वह पहलू है जो आमतौर पर अध्ययनों में नजर अंदाज होता है।

अध्ययन में क्या पाया?

हमने कुल मिलाकर 14 प्रखंडों में 30 गांवों के करीब 50 स्कूल देखे। ये स्कूल मध्यप्रदेश के स्कूलों की आम स्थिति को दर्शाते हैं। इनमें से एक भी स्कूल में ऐसा ब्लैकबोर्ड नहीं था जिस पर लिखा जा सके और बच्चे

पढ़ सकें। एक भी स्कूल ऐसा नहीं मिला जिसमें वास्तव में कक्षाएं चल रहीं थीं या पढ़ाई हो रही थी। किसी भी स्कूल में पर्याप्त संख्या में टाट पट्टी नहीं थीं। उसका असर यह है कि कई स्कूलों में दलित बच्चे जमीन पर बैठते हैं। उनसे कहा जाता है कि वे जमीन पर बैठें या अपने घर से बोरा लाएं। कई स्कूलों में, खास तौर से दलित लड़कियां, जमीन पर बैठती हैं।

50 में से केवल 10–12 स्कूल ऐसे थे जहां पर हम कह सकते हैं कि काम चलाऊ शौचालय हैं पर उनमें भी पानी नहीं है। सातवीं और आठवीं की लड़कियों ने बताया कि वे महीने में 4–5 दिन तो स्कूल आती ही नहीं हैं।

बाउंड्री वॉल की जरूरत क्यों?

हम ऐसी बाउंड्री वॉल की बात नहीं कर रहे हैं जिसका उद्देश्य उसके पीछे लड़कियां कूद रही हैं, खेल रही हैं, इत्यादि यह दिखाई ना दे। कतई नहीं। जरूर दिखाई देना चाहिए और बिल्कुल दिखाई देना चाहिए परंतु बाउंड्री वॉल बिल्कुल नहीं होना, स्कूल की कोई सीमा ही नहीं होना, मुश्किलें पैदा करता है। बाउंड्री वॉल न होने का मतलब यह है कि स्कूल और जो आम जगह है, रास्ता है, दुकानें हैं, सब मिल जाते हैं। स्कूल की कोई सीमा नहीं रहती है। स्कूल का मैदान वास्तव में एक आम रास्ता बन जाता है। जैसे, बुरहानपुर में लड़कियों के एक स्कूल के शौचालय में हमारे देखते–देखते सड़क चलता एक आदमी घुस गया, मोटर साइकिल रोककर दूसरा आदमी घुस गया। जो लड़कियां मैदान में खेल रही थीं वे तुरंत अंदर भाग गईं क्योंकि 3–4 मोटर–साइकिलें उनके स्कूल के मैदान में आकर खड़ी हो गई थीं। स्कूल के सामने सड़क है और सड़क के किनारे चाय की दुकानें हैं। स्कूल की छात्राओं ने हमें बताया कि चाय की दुकान में बैठे हुए पुरुष सारा दिन उन लड़कियों को घूरते रहते हैं। इससे लड़कियां बहुत असहज हो जाती हैं और कई छात्राओं के अभिभावक इसी कारण से पढ़ाई छुड़वाने की बात करते हैं। अधिकतर छात्राओं ने कहा, ''स्कूल ही तो एकमात्र जगह है जहां आकर हम खेल सकती हैं और स्कूल में ही बाउंड्री वॉल तोड़ दी गई है। अब हम खेल भी नहीं पातीं क्योंकि हर वक्त बाहर के लोग घूर रहे होते हैं या स्कूल के मैदान में, शौचालय में आते हैं। हर सड़क चलता घूरता है।'' स्कूल के परिसर का कुछ महत्त्व है जिसमें विद्यार्थियों को स्वतंत्रता होती है, स्कूल के क्रियाकलाप होते हैं। यदि वह सड़क से ही मिल जाए तो स्कूल और सड़क में फर्क ही क्या रहेगा?

स्कूल जाने के साधन

सरकारी नीति के अनुसार 5 कि.मी. के दायरे में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय होना जरूरी है। जिन गांवों में हमने फील्ड वर्क किया उनमें हायर सेकेंड्री स्कूल 5 से 50 कि. मी. दूरी पर हैं। परिवहन की सुविधा का कोई सवाल ही नहीं है, कल्पना भी नहीं कर सकते। स्कूल का दूर होना और परिवहन की सुविधा का न होना किस प्रकार से शिक्षा प्रभावित करता है इसका एक उदाहरण मैं आपको देती हूं। ऐसे बीसियों उदाहरण इस अध्ययन के दौरान सामने आए हैं। माया उइके होशंगाबाद जिले में पिपरिया तहसील के डापका गांव में रहती है। उसने 2007 में आठवीं कक्षा पास की थी। वह आगे पढ़ना

चाहती थी। सबसे पास उच्चतर माध्यमिक शाला, जहां वह जा सकती थी, वह डापका से 16 कि.मी. दूर है। उसके पिता से सब लोगों ने कहा कि आप पढ़ाई की बात छोड़ो, इसकी शादी कर दो।

किसी कारण से उसके पिता, जो खुद एक खेतिहर मजदूर हैं, उनको लगा कि अगर लड़की की इच्छा पढ़ने की है तो उसे पढ़ाना चाहिए। उनके कोई ऐसे रिश्तेदार नहीं थे जिनके पास लड़की को पिपरिया में रख देते। न ही यह संभव था कि लड़की को पिपरिया में किराये का कमरा लेकर रख देते। 6 लड़कियां, जो इसी स्कूल में आठवीं में पास हुई थीं, उनमें से कोई भी आगे पढ़ने की स्थिति में नहीं थीं। उनके घर पर मना कर दिया गया था। माया पढ़ना चाहती थी और उसके पिता मान गए थे। इसी बीच मध्यप्रदेश सरकार की एक योजना लागू हुई। इसके अनुसार, ''उन लड़कियों को, जिनके गांव में उच्चतर माध्यमिक स्कूल नहीं हैं और वे अगर आठवीं पास करके आगे पढ़ना चाहती हैं और पास के गांव का स्कूल 5 कि. मी. से ज्यादा दूर है तो स्कूल जाने के लिए उनको साइकिल दी जाएगी।'' इससे माया को बहुत जोश आ गया और माया ने भी साइकिल ले ली। उसने अपनी एक मित्र, रानी को भी पिपरिया के स्कूल जाने के लिए मना लिया। इस प्रकार रानी और माया ने तय किया कि वे आगे पढ़ेंगी। तय हुआ कि रानी का भाई उनको गांव के रास्ते से 8 कि. मी. दूर मेन रोड तक रोज छोड़कर आया करेगा और रोज वापस लेकर आएगा।

माया कहती है कि जिस दिन रानी का भाई नहीं आ पाता था उस दिन उनकी छुट्टी हो जाती थी क्योंकि वे स्कूल जा नहीं पाती थीं। इस कारण से उनकी उपस्थिति बहुत कम हो गई थी। दूसरी बात थी कि 32 कि.मी. रोज साइकिल चलाना बहुत थकाने वाला था। रोज सुबह घर का सारा काम करके वे स्कूल जाती थीं और स्कूल से वापस आकर घर का सारा काम करती थीं। लड़कियों ने लिस्ट बनाई कि वे क्या–क्या काम करके स्कूल जाती हैं और क्या–क्या काम वे घर वापस आकर करती हैं। एक तो वे घर वापस आकर पढ़ाई नहीं कर पाती थीं; दूसरा, आधे समय स्कूल ही नहीं जा पातीं थीं। दोनों नौवीं में फेल हो गईं और उसके बाद उनकी पढ़ाई भी खत्म हो गई। पढ़ाई क्यों खत्म हो गई?

लड़कियों की पढ़ाई कब तक जारी रहे?

यह लगभग हर जगह हमको बताया गया कि लड़की तब तक पढ़ सकती है जब तक वह फेल नहीं होती। यह केवल गांवों और कस्बे का नियम नहीं है। मुझे दिल्ली की बस्तियों के बारे में भी यही पता चला। मैंने अपने बीएड के विद्यार्थियों से भी कहा कि वे अपने आसपास पता करें। ये एक नियम जैसा है कि लड़की तब तक पढ़ सकती है जब तक वह फेल नहीं होती। लड़की की दृढ़ता, उससे भी महत्त्वपूर्ण उसके पिता की दृढ़ता भी काफी नहीं है क्योंकि उसके साथ एक और चीज जुड़ी है फेल होने के बाद आगे न पढ़ाए जाने का अलिखित नियम और शादी का दबाव।

अब मैं स्कूल की पहुंच के सवाल पर वापस आती हूं। एक तो यह है कि बहुत सारी लड़कियां और मां–बाप फिर भी कोशिश करते हैं कि यदि स्कूल दूर है तो बस से भेजें।

परंतु ऐसी लड़कियों की कुल संख्या बहुत कम है क्योंकि अधिकतर लड़कियों के लिए बस का खर्चा उठा पाना बहुत मुश्किल है। यह हैसियत लड़कों के लिए भी बहुत कम लोगों की है। पर फिर भी यदि वे जाती हैं तो एक तो मुद्दा वही है कि कितने काम स्कूल जाने से पहले करेंगी और कितने काम घर वापस आकर करेंगी। धक्के खाकर स्कूल पहुंचेंगी और अगर जरा–सी देर हो गई तो टीचर उनको कक्षा से बाहर निकाल देगी। अब वे देर से क्यों पहुंचीं? कई बार तो पैदल की दूरी होने पर भी लड़कियां देर से पहुंचती ही हैं क्योंकि वे बताती हैं कि उन्हें इतने सारे काम स्कूल आने से पहले करने पड़ते हैं। कुछ नहीं तो कम–से–कम एक कि.मी. दूर जाकर, घर का सारा पानी भरने के बाद ही वे निकल पाती हैं। बहुत सारी लड़कियों ने बताया कि वे पैदल चलकर, साइकिल पर चढ़कर या बस में धक्के खाते हुए स्कूल पहुंचती हैं और देरी के कारण डांट खाती हैं। बतौर सजा स्कूल में वे कम से कम 2–3 पीरियड कक्षा के बाहर खड़ी रहती हैं। लड़कियां देर से क्यों पहुंचती हैं या फेल क्यों होती हैं इसकी समझ शिक्षकों में नहीं होती।

सुरक्षा की अवधारणा बनाम असुरक्षा

एक अन्य अत्यंत तकलीफदेह बात लड़कियों ने यह बताई कि बस या साइकिल या पैदल चलकर स्कूल जाने को लेकर उन्हें हतोत्साहित करने वाली टिप्पणियां होती हैं। कोई नहीं छोड़ता। बस का ड्राइवर तक नहीं। तरह–तरह की बात करते हैं– 'घर बैठो', 'क्या करना है पढ़कर', 'शादी हो जाएगी', 'तुम्हारे काम संभालो,' 'क्यों मां–बाप को पागल बनाया हुआ है पढ़ाई–पढ़ाई चिल्लाकर' इत्यादि। और कुछ नहीं तो 2–4 गालियां देंगे। लड़कियों ने बताया कि सुरक्षा भी एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। वे कहती हैं कि इससे वे बहुत जूझी हैं। बहुत बार लड़कियों की पढ़ाई इसीलिए छूट जाती है। लड़कियों की सुरक्षा वास्तव में उनके आत्मविश्वास और आत्मसम्मान के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। पर समाज के द्वारा लड़की की सुरक्षा के लिए बनाई गई अवधारणा का मतलब क्या है? कोई सीटी बजा दे, कोई गाली दे दे, किसी ने छू दिया तो घर पर बैठ जाना चाहिए? गलत काम लड़के करें, पढ़ाई लड़कियों की छूटे।

हमने लड़कियों से पूछा, ''क्या वे छेड़छाड़ और टिप्पणियों के बारे में घर में बताती हैं?'' लड़कियों ने कहा, ''मां को तो भले ही बता दें और किसी को नहीं बतातीं।'' भाई को नहीं बतातीं, बाप को नहीं बतातीं, क्योंकि डर होता है कि पढ़ाई छुड़ा दी जाएगी। यह उनके लिए गंभीर विषय है। कई लड़कियों ने बताया कि जब ऐसी कोई घटना होती है तो वे पूरे दिन कक्षा में बैठती हैं पर पढ़ाई में बिल्कुल ध्यान नहीं दे पातीं। पर घर में नहीं बताती हैं क्योंकि बताने का मतलब है स्कूल छूट जाना। सवाल यह है कि क्या हमारे समाज में इस तरीके की बातों से निपटने का

एकमात्र तरीका लड़कियों की पढ़ाई बंद करवा देना ही होना चाहिए? कोई लड़कों को तो घर पर नहीं बैठाता। कोई उनसे नहीं कहता कि तुम सड़क पर जाकर लड़कियों को तंग करते हो, तुम घर पर बैठो। लड़कों को कोई दोष भी नहीं देता, सजा तो दूर की बात है। यह एक आम परिस्थिति है। मैं सिर्फ एक मोटा चित्र खींचने की कोशिश कर रही हूं, लड़कियों की समस्याओं का। लड़कियों को बताया जाता है कि ऐसे में उन्हें सिर नीचा करके चलना चाहिए।

घरेलू काम बनाम पढ़ाई

पूरे दिन स्कूल में पढ़ाई नहीं हुई, कोई टीचर 12 बजे आया, कोई 2 बजे आई, कोई आई ही नहीं तब भी मां–बाप कहते हैं घर बैठो, घर में काम करो। पढ़ाई तो लड़कों की भी नहीं हुई पर लड़कियों के ऊपर असर अलग है। दलित समुदाय की मांओं ने इंटरव्यू में यह कहा, ''अरे जब स्कूल जा के कुछ पढ़ती नहीं हैं, कुछ सीख ही नहीं रही हैं तो घर बैठें, घर में इतना काम है। घर में बीड़ी बनाएं, घर में हैंडलूम पर काम करें, घर का काम करें, बच्चों को संभालें, खाना बनाएं, सिलाई–बुनाई करें। उनके लिए तो इतना काम है। स्कूल में समय क्यों बरबाद करती हैं।'' ये सब काम आमतौर पर लड़कों के लिए नहीं गिनवाए जाते हैं। स्कूलों में पढ़ाई न होने पर भी उनका स्कूल नहीं छुड़वाया जाता है। लड़कियों को पढ़ाने की कीमत यानी स्कूल भेजने से होने वाले घर के काम के 'नुकसान की कीमत' इतनी ज्यादा है कि जरा–सा विघ्न भी उन्हें घर बैठाने का सशक्त कारण बन जाता है। यह भी सुनना पड़ता है कि घर का काम ही उनके जीवन में काम आएगा, स्कूली पढ़ाई नहीं। इसलिए बहुत बार लड़कियां ऐसी बहुत सारी दिक्कतों के बारे में घर में बताती तक नहीं हैं।

समझ समझ का फेर

एक अन्य गंभीर मसला भी सामने आया। बहुत बार इस माहौल में लड़कियां स्वयं भी मानने लगती हैं कि पढ़ना उनके बस की बात नहीं है। बहुत सारी लड़कियों ने कहा कि पढ़ाई होती है, पर वे समझ नहीं पातीं। असल में हमने कक्षा की प्रक्रियाओं पर काम नहीं किया है, इसलिए कक्षा की कौन सी प्रक्रियाएं लड़कियों के आत्मविश्वास पर चोट करती हैं, यह कहना मुश्किल है। यह समझना अपने आप में एक अलग दायरा है कि कक्षा में क्या होता है, पढ़ाई के अलावा। पर जो थोड़ा बहुत समझ में आया उसमें एक यह बात भी सामने आई है कि भाषा का बहुत अंतर है। आदिवासी क्षेत्रों में भाषा बिल्कुल अलग है। लोगों की अपनी भाषाएं बहुत फर्क हैं तो शिक्षक की भाषा समझने में भी लड़कियों को दिक्कत होती है।

अधिकतर शिक्षक भी पुरुष हैं। सिर्फ 24 प्रतिशत महिलाएं हैं। इनमें से भी अधिकतर शहरी इलाके के स्कूलों में हैं। हमने सोचा था कि हम इन 14 ब्लॉक में 28 महिला टीचरों का साक्षात्कार करेंगे। परंतु हमको कुल 12 शिक्षिकाएं सरकारी स्कूलों में मिलीं। सब लड़कियां मानती हैं कि यदि शिक्षिका हों तो उनसे सवाल पूछना, उनसे बात करना, शिक्षक की तुलना में ज्यादा सरल है। पहली से पांचवीं तक शायद इतना असर नहीं पड़ता है पर उसके बाद असर पड़ना शुरू हो जाता है। जब समझ में नहीं आता है तो शिक्षक भी कहते हैं कि ''भूसा भरा है तुम्हारे दिमाग में, तुमको कुछ समझ में नहीं आया।'' लड़कियां

भी कई बार मान लेती हैं कि लड़की होने के कारण उनमें ही कोई कमी है।

मुफ्त शिक्षा कितनी मुफ्त ?

एक और मसला है, फीस से संबंधित। यह कहा जाता है कि आठवीं तक की पढ़ाई मुफ्त है। हमने सरकारी अधिकारियों, शिक्षकों और पालकों से जो आंकड़े प्राप्त किए हैं, वे दर्शाते हैं कि वास्तव में मिडिल स्कूल में परिवारों को 120 रुपए से लेकर 400–500 रुपए तक प्रति वर्ष खर्च करने पड़ते हैं। वार्षिक परीक्षा फीस उसके अलावा होती है। आठवीं तक किताबें सब बच्चों को मुफ्त मिलती हैं। किताबें और यूनीफॉर्म लड़कियों को मुफ्त में मिलते हैं और उसके अलावा अलग श्रेणियों में अलग तरह के वजीफे हैं। ये छात्रवृत्तियां कई हैं, काफी हैं, बल्कि ये बात भी सामने आई कि इन सबसे फर्क पड़ा है। जैसे, एक लड़की ने कहा कि वह कम से कम स्कूल में दाखिला ले पाई बिना मां–बाप पर बोझ बने। उसको साइकिल भी मिली, जिससे फर्क पड़ा है। फिर भी फीस का मसला गंभीर है।

फीस का एक बड़ा हिस्सा स्कूल विकास निधि का है। मध्यप्रदेश में स्कूल विकास निधि ग्राम शिक्षा समिति को दे दी जाती है। उसकी यह जिम्मेदारी है कि वह स्कूल में विकास का काम करे। अब हम क्या समझें स्कूल विकास के काम से? कम से कम ब्लैकबोर्ड तो साफ सुथरे हो जाएं, कम से कम वहां टाट पट्टियां तो हों, स्कूल की बाउंड्री वॉल तो बन जाएं, शौचालय तो साफ रहें, इत्यादि। पर ऐसा कुछ नहीं होता। बहुत सारे शिक्षकों ने हमको अनौपचारिक रूप से बताया कि यह पैसा वास्तव में अभिभावक संघ के पास है। जबकि मध्यप्रदेश सरकार के अधिकारीगण कहते हैं कि स्कूल विकास के नाम पर पैसा इकट्ठा ही नहीं होता। हमें एक टीचर ने रसीदें तक दिखाई हैं जिसमें स्कूल विकास के नाम पर पैसा इकट्ठा किया गया। दूसरा, छठवीं से बारहवीं तक की कक्षाओं में 3–3 बार परीक्षा फीस ली जाती है। जिस माहौल में लड़कियों के ऊपर एक पैसा भी खर्च करने की तैयारी नहीं है, वहां पर बहुत सारी लड़कियों की पढ़ाई इसी कारण से छूट जाती है क्योंकि परिवार वाले परीक्षा फीस नहीं देते। अभिभावक या तो वास्तव में असमर्थ होते हैं या लड़कियों को न पढ़ाने का बहाना ढूंढ़ लेते हैं। कई बार कई परिवारों की वास्तविक परिस्थिति ऐसी होती है कि वे फीस नहीं दे सकते, इसलिए लड़कियां घर में बैठती हैं। दलित और आदिवासी पालकों ने यह भी कहा कि शिक्षा महंगा सौदा है क्योंकि फीस के अतिरिक्त कॉपी, पेन, पेंसिल, जाति और जनजाति प्रमाण पत्र और टी.सी., सबके लिए पैसे चाहिए होते हैं।

सब मर्ज की एक दवा : पढ़ाई छुड़वाना

जिस गांव में पांचवीं तक ही स्कूल है वहां पढ़ाई पांचवीं के बाद छूट जाती है। अगर एक–दो कि.मी. पर स्कूल है तो कुछ लड़कियों को आठवीं तक जाने का मौका मिलता है। फिर आठवीं के बाद पढ़ाई छूट जाती है और आमतौर पर दसवीं–बारहवीं के स्कूल बहुत दूर हैं और इसलिए बहुत कम

प्रतिशत लड़कियां दसवीं–बारहवीं के स्कूल में जा पाती हैं। वास्तविकता यह है कि जितने लेवल का स्कूल है उतने लेवल तक लड़कियों की पढ़ाई होगी और उसके बाद शादी। हम लोगों को यह समझ में आया कि यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है क्योंकि मध्यप्रदेश के बहुत सारे इलाकों में वास्तव में 14–16 साल की उम्र में लड़कियों की शादी हो जाती है। मध्यप्रदेश में ग्रामीण क्षेत्रों में 62% और शहरी क्षेत्रों में 53% लड़कियों की शादी 18 साल से कम उम्र में कर दी जाती है। दिलचस्प बात यह है कि लगभग सभी अभिभावक जानते हैं कि 18 वर्ष की उम्र से कम में शादी करना कानूनन अपराध है परंतु शादी के निर्णय में मानी समाज की जाती है, कानून की नहीं। हमारे अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि गांव/कस्बे में स्कूल की उपलब्धता लड़कियों की शादी की उम्र को ऊपर खिसकाने में सहायक होती है। यानी लड़कियों की शिक्षा की हर रुकावट उनकी शादी की संभावना को बढ़ा देती है, उम्र चाहे कुछ भी हो। पढ़ाई नहीं होती स्कूल में, फेल हो गईं, फीस नहीं दे पा रहीं, स्कूल घर से दूर है, छेड़छाड़ होती है – सबका हल है पढ़ाई छोड़ो, घर का काम करो और शादी का इंतजार करो। इसलिए शादी एक ऐसी धुरी है जिसके आस–पास लड़कियों की पढ़ाई का पूरा चक्र घूमता है।

यदि आज से 20 साल पहले की स्थिति से आज की स्थिति की तुलना करें तो यह स्पष्ट है कि दलित और आदिवासी अभिभावकों में भी लड़कियों की शिक्षा को लेकर रुचि बढ़ी है। सरकारी योजनाओं से भी थोड़ा बहुत लाभ हुआ है। प्राइवेट स्कूल में तो लड़कियों को भेजा नहीं जाता और न ही उनको ट्यूशन पढ़ने भेजा जाता है। इसलिए लड़कियों को सरकारी स्कूल में भेजने से अगर opportunity cost की किसी तरह से आपूर्ति हो रही है (छात्रवृत्ति आदि) तो उन्हें स्कूल भेज दिया जाता है। पर फिर भी थोड़ा ज्यादा पढ़ा दिया तो शादी में मुश्किल हो जाएगी, दहेज ज्यादा मांगा जाएगा, इसलिए इससे ज्यादा नहीं पढ़ाना चाहिए, जैसे मुद्दे अपनी पकड़ बनाए रखते हैं।

लड़कियां क्यों पढ़ें?

सरकार तो खुले आम कहती है कि एक महिला पढ़ेगी तो सारा परिवार पढ़ेगा और परिवार छोटा करने में मदद मिलेगी। अधिकतर लोग कहते हैं कि लड़की पढ़ेगी तो बच्चे पढ़ेंगे, बच्चों की देखभाल अच्छी होगी, वे अच्छे नागरिक बनेंगे, परिवार अच्छे से चलेगा, इत्यादि। मां–बाप भी कहते हैं कि ससुराल अच्छी मिल जाएगी, पढ़ा–लिखा लड़का मिल जाएगा, शायद नौकरी वाला लड़का मिल जाएगा, इत्यादि। मतलब पढ़ाना भी इसलिए ताकि शादी में किसी न किसी तरह का फायदा हो। लड़की को अपने संज्ञानात्मक विकास, ज्ञान हासिल करने, बौद्धिक विकास और कौशल सीखने के लिए पढ़ना जरूरी है, यह बात नहीं होती। मतलब लड़का क्यों पढ़े? ताकि वह एक इंजीनियर बने, डॉक्टर बने या कमाऊ बने या कुछ बने। लड़की क्यों पढ़े ताकि वह अच्छी मां, पत्नी बने और अच्छे नागरिक बनाए। यह मत लगभग सार्वभौमिक है।

लड़कियों के रोल मॉडल

जब लड़कियों से बात की गई तब उनके उत्तरों से एक नया, ताजगी भरा दृश्य देखने को मिला। अधिकतर लड़कियों के आदर्श व्यक्ति वे हैं जिन्हें उन्होंने देखा था। कोई

टीचर देखी तो टीचर उनकी रोल मॉडल है, कोई महिला डॉक्टर देखी तो डॉक्टर उनकी रोल मॉडल है, कोई महिला पुलिस या कभी देखा कि उनके परिवार को पुलिस ने बहुत प्रताड़ित किया है तो कहा हम पुलिस बनना चाहते हैं। यानी कि पढ़ना चाहते हैं ताकि हम शिक्षिका बनें, डॉक्टर बनें, यह बनें, वह बनें। सबके रोल मॉडल बहुत स्पष्ट हैं। एक भी लड़की ने नहीं कहा कि वह इसलिए पढ़ना चाहती है ताकि वह अपने बच्चों को ठीक से संभाल सके या उसकी शादी ठीक–ठाक हो जाए या वह अच्छे नागरिक बनाए। सभी जानती हैं कि शादी या दूसरे घर जाना ही उनकी नियति है। तो छठवीं से आठवीं तक आते–आते लड़कियां असहाय सी होकर बात करती हैं कि क्या करें, हमारी तो शादी कर दी जाएगी। इस तरह आठवीं या नौवीं तक आते–आते लड़कियां पढ़ने की अपनी इच्छा या कुछ बनने की अपनी महत्त्वाकांक्षा दबाने लगती हैं। हालांकि पढ़ने को लेकर उनमें बहुत गहरी रुचि दिखी।

वे जो पढ़ना चाहती हैं

कई लड़कियों ने बताया कि उनको गणित पढ़ना अच्छा लगता है, पर गणित के टीचर जैसे पढ़ाते हैं वह बिल्कुल समझ में नहीं आता। उनको अंग्रेजी पढ़ना अच्छा लगता है, उनको विज्ञान पढ़ना अच्छा लगता है और अगर कोई अच्छे शिक्षक मिल जाते हैं तो बस आंखें चमकने लगती हैं। यह भी नहीं है कि उनको सिर्फ भाषा पढ़नी है या उनको सिर्फ लड़कियों वाले कहे जाने वाले विषय पढ़ने हैं। नौवीं, दसवीं या बारहवीं तक आते–आते उनकी सोच भी ढलने लगती है। फिर यही होता है कि हमारे नसीब में यह ही है। हमको पढ़ाएगा कौन? हमारी सुनेगा कौन? लड़की की शादी तो होगी ही, हम मां–बाप से लड़ नहीं सकते, इत्यादि। बुरहानपुर की कक्षा छठवीं की एक लड़की को अपनी बड़ी बहन की शादी की चिंता थी, न कि उसके स्कूल छूट जाने की। मुस्लिम समुदाय में यह सबसे ज्यादा दिखा है। दलित और आदिवासी लड़कियों में जूझने की हिम्मत कहीं ज्यादा है। वे ज्यादा स्पष्टता से कहती हैं कि हम आगे पढ़ेंगे और दसवीं के बाद भी पढ़ेंगे, बारहवीं के बाद भी पढ़ेंगे। हमने पाया कि बुरहानपुर में बड़ी लड़कियों को पढ़ाने को लेकर ज्यादा हिचक थी। वहां के गांवों में तो स्पष्टतः मदरसे की शिक्षा पर जोर था। बुरहानपुर मुस्लिम बहुल ब्लॉक है, वहां ये दबाव बहुत ज्यादा थे। एक अन्य ब्लॉक है देवास का जिसमें कुल 10 प्रतिशत मुस्लिम आबादी है। वहां उनका जीवन बाकी सब लोगों की तरह है। वहां पर लड़कियों को आगे बढ़ाने का जोश ज्यादा था हालांकि सांप्रदायिक उथल–पुथल के कारण सुरक्षा एक चिंतनीय मसला था।

यौन उत्पीड़न का मामला

यह एक गंभीर मसला है फिर भी स्कूल और शिक्षा के संदर्भ में इस पर चलते–फिरते ही जिक्र होता है। हमारी यह जानकारी है कि 50 स्कूलों में से आधे से ज्यादा स्कूलों

में लड़कियों ने बताया कि उन्हें अलग–अलग तरह से छेड़छाड़ का सामना करना पड़ता है। हमारे फील्ड वर्कर बिल्कुल नए गांवों में, ज्यादा से ज्यादा 4 दिन तक रहते थे। हम फील्ड टीम ऐसी बनाते थे जिसमें 2 लड़के और 2 लड़कियां हों। हम लोगों को लगा था कि इतने संवेदनशील मसले पर लड़कियों के साथ खुलकर बात करने के लिए यह समय अवधि बहुत कम है।

सीमित समय में भी जब लड़कियों से फोकस ग्रुप चर्चा की गई तब उन्होंने शिक्षकों द्वारा, बड़ी कक्षा के लड़कों द्वारा स्कूल में और रास्ते में होने वाले यौन उत्पीड़न के बारे में बताया। यौन उत्पीड़न के कई तरीके उन्होंने बताए, जैसे फब्तियां कसना, उनकी चीजें छुपा देना, फेंक देना, उनके बस्तों में चिट्ठियां लिखकर डाल देना से लेकर छूना, उनके कपड़ों को छूना, यौनिक टिप्पणियां करना, शिक्षक द्वारा अकेले में बुलाए जाना या ऐसा कुछ कहना जिससे वो शरम से गड़ जाएं। लड़कियों ने बताया कि इस तरह के व्यवहार से उनको शरम आती है, परेशानी होती है, पढ़ने से मन उचट जाता है, डर लगता है परंतु इससे कैसे छुटकारा पाएं, किससे शिकायत करें यह समझ में नहीं आता। घर में ये बातें नहीं बतातीं क्योंकि घर में मां–बाप को एक ही बात समझ में आती है कि वे पढ़ाई छोड़ दें। लड़कियों ने इस तरह की बातें बताईं कि अगर पहली शिफ्ट में लड़कियों का स्कूल है, दूसरी शिफ्ट में लड़कों का स्कूल है तो पूरी लाइन लगाकर लड़के खड़े रहते हैं। लड़कियों का स्कूल से निकलना और स्कूल से घर तक जाना मुश्किल हो जाता है। जब टीचर भी इस तरह से शामिल होते हैं तब तो समस्या और गंभीर रूप ले लेती है। बहुत–सी लड़कियों ने बताया कि वे शौचालय नहीं जा सकतीं। यदि जाती भी हैं तो कई लड़कियां एक साथ जाती हैं।

गैर हाजिरी के कारण

लड़कियों की उपस्थिति स्कूल में कम होने के कई और कारण भी हैं। माहवारी के समय स्कूल न जाना एक महत्त्वपूर्ण कारण है। स्कूल, जिसमें उनको लगभग दिन भर रहना है, जहां पर वे इस परिस्थिति से जूझ सकें इसकी व्यवस्था ही नहीं है। दूसरी बात है कि जिस तरह के शौचालय हैं जिनमें न पानी है, बहुत बार न छत है, वहां शौचालय होना या न होना बराबर है। यह भी आम बात है कि आठवीं और बारहवीं तक के काफी स्कूल, लड़के–लड़कियों दोनों के होते हैं। इनमें लड़कियों के लिए यदि अलग शौचालय हो भी, पानी भी हो, तब भी उपयोग नहीं कर पातीं क्योंकि लड़के पीछा करते हैं। बहुत–सी लड़कियों ने बताया कि लड़के खुली छत वाले हिस्से से शौचालयों में झांकते हैं। इससे आमतौर पर लड़कियों में इतना डर बैठा हुआ है कि उनको बेहतर लगता है कि वे 4–5 दिनों तक स्कूल आएं ही नहीं। आंकड़ों में शौचालय होने का वास्तविकता से क्या लेना देना है यह लड़कियों से बात किए बिना समझना नामुमकिन है। यह अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण और गंभीर मसला है जिसका आमतौर पर जिक्र भी नहीं होता है।

छात्रावास स्वतंत्रता की एक किरण

लड़कियों के छात्रावास अपने आप में महत्त्वपूर्ण संस्थाएं हैं। लड़कियों के लिए छात्रावास जरूरी हैं। आज की परिस्थिति में जब हाई स्कूल दूर हैं, कई बार तो मिडिल स्कूल भी दूर हैं इसलिए छात्रावासों के प्रावधान की योजना महत्त्वपूर्ण है। लड़कियों ने हमें बताया

कि छात्रावास इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इससे वे घर की चिक–चिक से दूर हो पाती हैं। घर की चिंता किए बिना वे अपनी सहेलियों के साथ रह सकती हैं, खेल सकती हैं, पढ़ सकती हैं, मतलब यह लड़कियों पर कितना हावी है कि घर में हैं तो उन्हें लगातार काम करना है। इसलिए जो चार घंटे वे स्कूल में हैं, जहां वे अपने दोस्तों के साथ बिना रोक–टोक के बातें कर सकती हैं, खेल सकती हैं, कूद सकती हैं, उनके लिए वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आमतौर पर इसलिए हॉस्टल बहुत अच्छे लगते हैं क्योंकि हॉस्टल में आने से, कम–से–कम कुछ महीनों के लिए, घर से नाता टूट जाता है। आमतौर पर लड़कियां हॉस्टल में आकर बहुत खुश होती हैं। पर दिक्कत की बात यह है कि हॉस्टलों के हालात इतने खराब हैं कि जैसे लड़कियों को एक जेलखाने से उठाकर दूसरे जेलखाने में डाल दिया गया है।

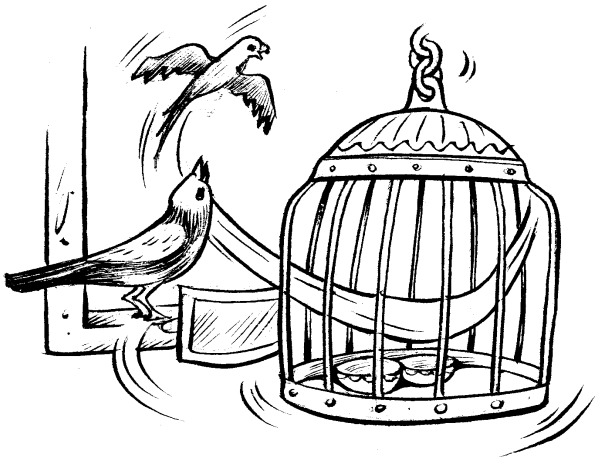

बुनियादी सुविधाओं के नितांत अभाव में जैसे– बिना पानी या एक हैंडपंप वाला एक बाथरूम, बिना बाउंड्री वॉल और समुचित व्यवस्था वाला भवन, इत्यादि के कारण हॉस्टलों में रहना काफी कठिन काम है। आमतौर पर वार्डन के लिए भी रहने, सोने की कोई अलग व्यवस्था नहीं रहती। खाने की व्यवस्था भी ढंग से नहीं है। इस तरीके से जो हॉस्टल चलते हैं उनकी दशा अत्यंत शोचनीय है। आश्चर्य यह है कि यह स्थिति केवल दलित और आदिवासी छात्रावासों की ही नहीं बल्कि कस्तूरबा गांधी विद्यालय के हॉस्टलों की भी है। इनमें भी 100 लड़कियों को रखने का कोई सुरक्षित माहौल नहीं है, पढ़ने का तो माहौल ही भूल जाइए। कस्तूरबा गांधी विद्यालय केंद्र सरकार की इस समय एक बेहद चर्चित स्कीम है जिसको लेकर बहुत बातें हो रही हैं। इनका बजट राज्य के अनुसूचित जाति और जनजाति छात्रावासों की तुलना में बहुत बेहतर है, ये ज्यादा सुविधाएं पाते हैं। परंतु हालत कोई बहुत ज्यादा बेहतर नहीं हैं। एक कमरा जो थोड़ा–सा बड़ा होगा, जिसमें लड़कियां रह रही हैं, कई बार सांप–बिच्छुओं के डर के साथ रह रही हैं, जमीन पर सो रही हैं क्योंकि या तो पलंग नहीं हैं या तो पलंग रखने की जगह नहीं है, पानी नहीं है, इत्यादि, इत्यादि। कुल मिलाकर बहुत ही दयनीय स्थिति है इन हॉस्टलों की। यह समझना इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सरकारी अध्ययनों में छात्रावासों की मात्र संख्या आती है, पर छात्रावासों की स्थिति क्या है इस पर कोई बात नहीं होती है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वास्तव में छात्रावास लड़कियों की शिक्षा के लिए उनकी पढ़ाई जारी रखने के लिए और उनको बहुत जकड़ी हुई पितृसत्तात्मक व्यवस्था से कुछ समय से मुक्ति दिलाने के लिए, बहुत महत्त्वपूर्ण जगहें हैं, परन्तु उनकी स्थिति दयनीय है।

डॉ. साधना सक्सेना : दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में प्रोफेसर हैं। उन्होंने अपने काम की शुरुआत मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले में किशोर भारती संस्था से की थी। वे होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की स्रोत व्यक्ति रही हैं। 'शिक्षा और जनांदोलन' उनकी एक महत्त्वपूर्ण किताब है।